मैं समुद्र ही हो सकता था
श्याम बिहारी

आदरणीय डॉ. भूषणलाल कौल के लिए

स्नेह और सम्मान के साथ

[illegible]

15.07.08

मैं समुद्र ही हो सकता था

श्याम बिहारी

प्रथम संस्करण : 2008

मूल्य : रु. 150.00

MAAIN SAMUDAR HI HO SAKTA THA
–SHYAM BEHARI

लेजर कम्पोज़िंग. एवं आवरण चित्र :
श्याम बिहारी जम्मू

बरस के बाद नहीं
हर दिन
करता हूं तुम्हें याद
जब भी देखता हूं आईना
याद आते हो पिता

◆◆◆

यह किताब तेरे लिए है
उन सब के लिए भी
जो एक बार बिछड़ कर
मिले ही नहीं...
दिखे ही नहीं कभी

लोग कहते हैं
दुनिया छोटी हो चुकी है

◆◆◆

उम्र बीतने के कगार पर

नीम के पत्तों सी स्मृतियां पीली पड़कर झर रही हैं! रोज़ सफाई रोज़ नया ढेर! व्यतीत गहरा है.. कैसे हो पाऊं मुक्त? इस डायरी में सहेजनी हैं मुझे कुछ कविताएं.. कुछ गद्य भी..

पर कैसे? उनकी सजावट.. क्रमानुक्रमिकता?

कैसे का प्रश्न मत करो.. समय कम है और काम बहुत!

◆◆◆

उन्होंने पूछा

कब छपेगी तुम्हारी किताब ?

अब क्या कहूं.. यह तो अभी समय के गर्भ में है। पता नहीं.. कब किस रूप में प्रकट होगी! अभी से क्या कहूं!

आखिर मुझे शब्दों के छिलके नहीं! एक धड़कती हुई किताब चाहिए, जिसकी सांसों में सुगंध हो... एक–एक पंक्ति में किलकारी हो... कोई प्रश्नाकुल चीख ... एक धड़ाम ... गड़गड़ाहट.... बिजलियों की कौंध!

कुछ ऐसा यह सोयी–सोयी अलसायी सी दुनिया आंखें खोलने को विवश हो जाए! क्या आ पाएगी ऐसी किताब! क्या मैं दिवास्वप्न देख रहा हूं!

◆◆◆

पलक खुलती है
पलक गिरती है
दृश्यों की इन परतों में
कहां है तू

मेरा मन भटकता डगर डगर
फिर भी कहीं भीतर इक आस

वह आएगी मुझ तक
जैसे आए थे बुद्ध
आम्रपाली के पास

◆◆◆

कुछ है जो
उबलता है
खौलता है दिल में

कुछ है
जो बहकना
बह जाना चाहता है

कुछ है
जो सच सा नंगा है
तस्वीर को आईना दिखाना चाहता है

आईने की गवाही में बदल जाते हैं चेहरे
फिर हाथ नहीं आते कहां जाते हैं चेहरे

◆◆◆

मेरे सपनों की डायरी

कुछ यूं आ

जैसे पृथ्वी देती है

किसी पहाड़ को जन्म

◆◆◆

बूंद सैलाब हुई जाती है
नींद अब ख़्वाब हुई जाती है
हम तो बस दिल जला के बैठे हैं
देखें! यह आग और क्या जलाती है

◆◆◆

अबके मौसम
आम चखने को भी
तरस गया मन

उनका उधारीकरण
इनका उदारीकरण
आपका पोखरण...

मेरा चीरहरण

◆◆◆

मै हूं एक गड़बड़ सी किताब

जिसका अंतिम पन्ना लिखा जा चुका बहुत पहले और पहला रहा अनलिखा... किनारे बैठा देखता हूं डुबकियां लगाते लोग.. अपने लिए बटोरे कुछ छींटे.. उन्हीं से भीग लेता हूं.. इतना हूं मैं... बस! इतना ही..

◆◆◆

निचुड़े लाख ग़म

मिला इक तुहिन कण

समुद्र सा कवि–मन

◆◆◆

तुम क्या जानो
रिश्तों की गर्मी
धरती का दर्द

पत्थर तुम लहू सर्द
नारा–ए–कत्ले आम

तुम क्या जानो
बुद्ध... बामियान!

तुम्हारी जानिब तो
बारूद खुदा है ताबूत है स्वर्ग

तबाही !
अल्लाह मेहरबान
◆◆◆

देशः—

कील पर टंगी

बिना जेब की फटी कमीज़

दिल्लीः—

रास्ता कोई भी हो

काट जाती है एक काली बिल्ली

मैंः—

अपने विरुद्ध एक सतत युद्ध

◆◆◆

टोपी है भव्य
संसद सी

जुर्राबें बदबूदार

इस टोपी और जुर्राबों में
जिसे होना था...
पता नहीं वह कहां है ?

◆◆◆

मैने तो जब भी बोला
सच ही बोला था
सच के सिवा
और था ही क्या मेरे पास..

पर तुम्हें तो
सच से लगता था डर..
इसीसे ड़राया मुझे जी भर

और देखो
अब मैं बोल रहा हूं
अंतिम झूठ पहली बार

सत्यमेव जयते

◆◆◆

अकसर मेरे दांतों में

फंस जाता है कोई दाना

न चबता है न निकलता है

जैसे .. वीरप्पन

जैसे... काबुली जहाज़

जैसे... कश्मीर

मेरे मुंह में यह दांत किसके हैं ?

◆◆◆

इतना फौलादी भी हो सकता है झूठ

कि सच का कीमा कर दे? चट्टान दर चट्टान
खड़े कर दे अभेद्य किले हमारे दिलो दिमाग में?
फिर भी कुछ पागल सच दीवार फांद भाग निकले
हैं.. यह उन्हीं के बयान हैं

◆◆◆

पागल वह शख्स
कहता है–
अब यह तिरंगा नहीं रहा मेरा

वो चक्र तो बिल्कुल ही नहीं
जो काटता रहा मुझे
हरियाली के नाम
किश्त–दर–किश्त

उगाता रहा
चक्रों की फसल
सूद–दर–सूद

छिपी है कितनी घृणा
कितना बारूद
हरियाली के खेमे में...
कोई भी देख सकता है

फिर किसलिए करूं
इस ध्वज को प्रणाम् ?

कुछ पल रुका वह पागल

कुछ सोचते हुए बुदबुदाने लगा

पर नहीं!
प्रणाम् तो करना होगा
प्रणाम् तो करना होगा

सुना है
कपड़े के इस टुकड़े के लिए
कटे थे लाखों

और चुपके से पूछ लेता है
क्या वे पागल थे ?

◆◆◆

पांव की बिवाईयों ने घेर लिया एक दिन, कहने लगीं– माना कि चांद का अदीठ पक्ष हम...नज़र नहीं पड़ती हम पर किसी की

पर तू तो देख! दर्द की एक एक रेखा देख... प्रागैतिहासिक दस्तावेज़ नहीं हैं क्या?

देख! हमने जो तय किए है सफर, ढोए हैं पहाड़!

मुझे याद आया अलिया.. मेरे आंगन में झाडू लगाता अलिया!

मुझे याद आई चम्पा.. कोठा उतारती चम्पा! कहां धोऊं मैं अपने आदमी होने की शर्म?

◆◆◆

बोरों में भरा वह गा रहा है
जन गण मन अधिनायक जय हे

उसे फैला दिया जाता है
खुले मैदान में
वह दिखता है
लोकतंत्र की धूप सेंकता हुआ

हां आज़ादी! खुली खुली है हवा
मिल रही है नमीं से मुक्ति

अब उसे छननी से छान कर
दिया जाता है पानी का छींटा
(लो यह रहा तुम्हारा वेतन)

विकास के महाऐक्सपेलर में
निचोड़ लिया जाता है उसका तेल

बीज की यह कैसी है बेबसी
कि उसी के तेल से
उसी के तेल के लिए चलता है यंत्र
और उसे पता भी नहीं चलता

◆◆◆

मेरे बूढ़े दुपहिए
तुम्हें फिटनेस का सर्टिफिकेट वे देंगे
जिनकी अपनी फिटनेस
हिचकोले खाती डोलती है
चेचक दाग सड़कों पर!

ओ! प्यारे विद्यार्थी
तुम्हें लेना है चरित्र प्रमाणपत्र उनसे
जिनके अपने चरित्र का कोई अता पता नहीं!

और अब इस शहर के प्रतिष्ठितों को
सूचीबद्ध करने का जिम्मा उनके कंधों पर
जिनमें दूध और चूने के पानी में
फर्क की कोई तमीज़ नहीं!

◆◆◆

वे कहते हैं
गाय वहां देनी चाहिए
जहां घास हरी हो

हरी घास की आड़ में
घात लगाए भेड़िए
उन्हें क्यों नहीं दिखते

◆◆◆

या रब!

तेरी मर्ज़ी थी मुझे बनाया हिंदू... जब चाहो जहां चाहो जैसे चाहो फिट कर दो मेरे माथे पर शिकन तक नहीं आती!

हो सकता है कभी भगवान मेरे के दिल में ख्याल आए मुझे मुसलमान बना देने का!

तो ऐ मेरे मौला! परवरदिगार! तू बनाना मुझे मुसलमान... मीर तकी मीर सा.. मिर्ज़ा गालिब सा... न उनसे कमतर..न बेहतर कि सोच की दुनिया में सफाई की सख़्त जरूरत है...

◆◆◆

प्रश्न मेरा नहीं
पृथ्वी का है

उसकी गति में
जो गीत थे जीवन के
शोर में बदल चुके हैं

◆◆◆

मजाज़ी हो.. हकीकी हो... इश्क तो इश्क है!

वे जो चिढ़ते है इश्क़ से अगर देख पाते यह करिश्मा...यह कायनात... यह सारे का सारा वजूद.. है किसी के इश्क़ का नज़ारा!

पर उन्होनें तो बांध रखी हैं आंखों पर पट्टियां... हवा में भांजते है लाठियां!

शायद ये उनका शौक़ हो या पेशा.. हुआ करे मुझे क्या ऐतराज़!

वे ख़ंदके खोदे! खाईयों को और चौड़ा करें! झूठ और नफरत की आग में सड़ें लडें मरें.. मैं उन्हें रोकूंगा नहीं!

बस! तौहीने इश्क़ न करें!

इस कुफ्र की कहीं कोई तौबा नहीं!

◆◆◆

विचार सफेद चींटियों की तरह फैलते हैं और दीवारों की नींद उड़ा देते हैं...उन्हें खोद डालते हैं चुपचाप.... अकस्मात किसी दिन लड़खड़ाते हुए ढह जाती हैं दीवारें और बदल जाती है दुनिया...

◆◆◆

अन्तिम कुछ नहीं होता...होता तो यह जीवन इतना परिवर्तनधर्मी न होता.. सृष्टि इतनी हलचल में, चलायमान, अस्थिर न होती....सूरज न होता, धरती न होती, मौसम न होते.. तुम न होते.. मैं न होता, हमारे बाद भी कुछ न होता। अन्तिम रब होता है... या फिर कुछ नहीं होता।

◆◆◆

ओ शिव ! जान गया मैं
एक शब्द की   कवि–कथा...
चिदानंद की अमर व्यथा... नर्तकात्मा!

छूटा संसार छूटा घरद्वार
उतरा जो एक बार
इस रचना के आर–पार
वह तो गया!

खो गया नृत्य में
चिरंतन सृजन–सत्य में!
परमाणु–परममहत्त्वांतो–नर्तन
दामनी–दर्प मेघ–गर्जन
हवा सनसन रिमझिम–रिमझिम

हर कहीं अलग लय
हर कहीं अलग ताल...
क्या करूं..क्या करूं...
गूंगे सब शब्द जाल

तन पुलकित मन मुग्ध..दग्ध
ओ! नटराज तेरी यह रचना... नर्तकात्मा
◆◆◆

दिक और काल की
प्रणय–गाथा है यह सृष्टि

मैं कोई यूं ही नहीं हूं
असाधारण परिणाम हूं
उस महास्खलन का
प्रकाशाब्धियों पूर्व जो घटा
आज भी घट रहा है
प्रतिपल अणुपल में

मैं कोई यूं ही नहीं हूं
जीवन हूं जीवन!

कितनी पृथ्वियां प्रगटीं
और विलीन हुईं
तब जाकर संभव हुआ मैं
यूं ही नहीं हूं मैं

◆◆◆

तुम तराशते हीरा

मैं कविता

तुम जौहरी पत्थर के

मैं जीवन का..

◆◆◆

सोए थे दृश्य
मैं भी चल रहा था नींद में
उसे देखा और कहा.. सुंदर!

बस इतना ही?

तुम सुंदर हो ! –मैने कहा

कुछ और बढ़ो !

नहीं !
तुम तो बहुत सुंदर हो !
पर मैं तुम्हारा नाम नहीं जानता?

बस बस रहने दो
नाम सौंदर्य का कीड़ा है

◆◆◆

उन्होंने कहा–
'जैसे हम पहला प्यार
नहीं भूलते कभी'...

पर मैं तो
अपना पहला
दूसरा और तीसरा

और आज तक
जितने भी प्यार
कोई भी नहीं भूला कभी!

यह अलग बात है
मेरा हर प्यार इकतरफा था

◆◆◆

लेता है जन्म काग़ज़ में..
मरता है काग़ज़ में
इस दौर में हर ख्याल..
सड़ता है काग़ज़ में

काग़ज़ी हैं रिश्ते यहां
काग़ज़ी हैं लोग
काग़ज़ी निदान सब
काग़ज़ी हैं रोग

काग़ज़ी हैं दावतें
काग़ज़ी अदावतें

मेरा इश्क भी हो गर काग़ज़ी
तो क्या फर्क पड़ता है
दिल तो बहला ही देगा

◆◆◆

अब कहां खिलते हैं
रिश्तों के सुलगते गुलाब
नई रोशनी के अंधेरों में
दोस्त भी अब काग़ज़ों में मिलते हैं

◆◆◆

किताबें कहीं भी हों

मुझे सूंघ लेती हैं! मुझे देखते ही उनकी आंखों में उतर आता है खुमार!

'मुझे छूकर तो देख...एकाध पन्ना ही पलट, मेरे लेखक का नाम ही पढ़ ले कम्बख्त!'– पुस्तकें मुझसे करती हैं लठ्ठमार होली सा प्यार!

प्रिय पुस्तको! तुम सब जो शीशाबंद परियां हो, तुम्हें तो होना चाहिए था ईश्वर और उसकी नियामतों की तरह मुक्त और मुफ्त!

हवा की तरह एक दिल दिमाग से दूसरे तक की सतत यात्रा में! पानी की तरह हर प्यासे की बुझाते हुए प्यास! पुस्तकालय और पुरातत्व संग्रहालय में कोई तो अंतर होना चाहिए था!

◆◆◆

दिखता तो पूरा हूं
फिर क्यों अधूरा सा

क्या मैं परिधि हूं या केंद्र
क्या मैं तुम हूं
या तुमसे परे कुछ और

शायद नदी के तल में बंधा पत्थर
या डूबता दलदल
या उड़ता उकाब! आफताब!

नहीं!
मैं मकड़ी! मैं जाला!
मैं हर चाबी का ताला
मैं हूं और यह आस्मां
और तो कुछ भी नहीं यहां!

कितना अजीब है यह मैं
मुझ ही को नज़र नहीं आता!
◆◆◆

तुम्हें देखा!

जैसे कोई कविता पहले ही पाठ में उतर जाए मन के पार...फूटे पठार में निर्झर..जैसे कली कोई खींच कर धरती से सारी महक.. घोल दे हवा में वसंत... खिले बादलों में फाग.. घुंघरायी रिमझिम...तुम्हें देखा और स्तब्ध धूप ठगी ठगी सी हुई निहाल... गोल मटोल अनमोल सा कोई बादल बच्चा... छेड़ता खिलखिलाता.. निकला पास से...कुछ यूं कि भीगा मन.. तुम्हें देखा तो...

◆◆◆

नदी! मैं जानता हूं बूंद बूंद पहाड़ सा दर्द जब
रिसता है तुम लेती हो जन्म!

जानता हूं पत्थरों की पछाड़ से चट्टानों की कोख
से उगाहते हुए पहाड़ की मिट्टी का कुंआरापन
कैसे निकलती फलांगती अल्हड़ सी गुज़रती हो
धरती के घावों पर रखती मरहम!

लेकिन नदी! कैसा लगता है किसी खुंखार मोड़
पर सभ्यता की कत्लगाहों से और कत्लगाहों की
सभ्यता से निकले रक्त का तुझ में आ मिलना!

कैसी लगती है अपने भीतर मचलती मछलियों की
अपमृत्यु

कैसा लगता है धरती का पाप गरल ढोना और
समुद्र भर रोना

सच कहना नदी...

◆◆◆

मैं समुद्र ही हो सकता था
कि प्रत्येक धारा ने
मुझ ही में समाना है
मुझ ही से पाना है
अपने प्रवाह का बल

अपार है मेरी कड़वाहटों का विस्तार
पर अथाह है मेरी प्रतिबद्धता

आओ! तमतमायी हुई झुलसी हवाओ
मुझसे लो जितनी चाहो उतनी नमीं

शिखरों को विशुद्ध सत्व से
धवल करो
तराई मैदानों में भरो इंद्रधनुषी रंग

अरे ! मेरी चिंता न करो
मेरा गौरव मेरी व्यथाओं में सुरक्षित है
◆◆◆

सत्य या स्वप्न...

वह बस ड्राईवर.. डांटता उसे–
क्या कुछ लादा है छत पर
ओ! बेवकूफ गूजरी
चुंगी चुकाने के भी पैसे नहीं पल्ले
निकल पड़ी सफर पर?
यहां तो हर मोड़ चुंगी है!

उसने घबरा कर मेरी तरफ देखा
आंखों में बेचारगी गहरी
चेहरा पीला उदास
जैसे बरसों उसे खाया हो भूख ने
चेहरे पर गर्द की पर्त
जैसे मुद्दतों न देखा हो पानी
फिर भी अद्भुत थे
अद्भुत थे उसके नक्श नयन
कीचड़ में स्वर्ण–किरण से

मैने जेब से कुछ रेज़गारी निकाल
उसे थमा दी
कृतज्ञ होंट मेरे कानों तक सरके
जैसे वह थी पृथ्वी

मैं आकाश
और अचानक मैने पाया
अरे! यह तो मेरी ही आत्मा है!

गर्म चांटे सा सन्नाटा
मेरे भीतर उतर आया

क्या हुआ इसे...किसने सताया?
यह इतनी बीमार क्यों?
कहां गया इसके चेहरे का रंग?
इस पर यह जुल्म किसके?
क्या लादा इसने छत पर
जिसकी चुकानी है चुंगी
हर मोड़ पर?
और यह दरबदर सा सफर क्या है?

कारण नहीं थे दूर..
मेरी आत्मा थी पहाड़ों की
देह शहर में ..
इसका तो होना था यही हाल
मरी नहीं यही क्या कम है?

शहर भी तो नहीं रहे पहले से
दौड़ते है सिर के बल
जैसे पीछे लगे हों शिकारी कुत्ते
हाथ पांव भी पता नहीं
कहां–कहां छोड़ आए हैं

दिलो में
धड़कनो का गीत नहीं एक भी
चट्टानों के घर्षण का घोष है बस

मेरी आत्मा का तो
यही हाल होना था
कि पाल रखें हैं मैने शब्द
और उनका आतंक
या फिर मैं ही पालतू उनका

वे चाटते रहे उसकी मिठास चुपचाप
कि झूठ की इस पांच तारा कारा में
घुटना ही था उसका दम..
वह थी
पहाड़ी आबो हवा की चिड़िया...

पर उन्होने तो मूंड डाले है

पहाड़ों के भी सर
कि ख़ौफ खाने लगे हैं
पहाड़ भी अपने वजूद से..
अब तो होती है वहां
बारूद की बरसात दिन रात...

कहां ले जाऊं तुझे मेरी आत्मा
दुनिया के किस कोने में
जहां तुम अक्षयी हो खिलो..

◆◆◆

जी हां !
यह फूल नहीं हैं

इनकी पत्तियों का रंग
आपका तयशुदा रंग नहीं

इनकी गंध भी तो
आपकी तयशुदा नहीं

कम्बख़्त
न दाएं झुके हैं न बाएं
सूरज की तरफ पीठ किये रहते हैं

सच कहते है आप
यह फूल नहीं हैं

◆◆◆

वही एकाक्षरी मैं
इस मैं का क्या करूं?

पारा पारा यह मैं..
टूटा तारा यह मैं

दुर्निवार अक्षय पारावार
कितना बाहर कितना भीतर
इस मैं का क्या करूं?

मित्रों को
मेरे बड़बोलेपन से शिकायत है

कहते हैं तेरा यह मैं
पानी की सतह पर
तेल सा तिर आता है

तेरा यह मैं कि
टीन के टपरे पर
टपकते ओले

चट्टानों पर चट्टानों की तहें
किसका है यह किला?

कि कोई भी
ताज़ी हवा का झोंका
मारे डर के
दूर से ही निकल जाता है

नहीं जानता मैं
मुक्ति किस चिड़िया का नाम है
प्रेम किस फूल को कहते हैं

बिना ओर छोर की सुरंग
लपेटता उमेठता
धकियाता बतियाता
चलता ही चला जाता मैं
कोई मुहाना नज़र नहीं आता
कोई मुहाना नज़र क्यों नहीं आता?
◆◆◆

मैं एक साथ
कितने कितने लोगों से
करना चाहता हूं बात

कुछ रिश्ते जो टूट चुके
कुछ टूटने के कगार पर
कुछ दोस्त जो चाहते
उनके खेमे की भाषा बनूं

कुछ ऐसे
जो मुझ ही में तलाशते अपना बयान

हर आंख इक कुआं
पता नहीं दर्द के किस समुद्र में खुलता है

मैं डूबना चाहता हूं हर आंख में
गिनें चुने घूंटों में पी जाना चाहता हूं समुद्र

मैं कितने कितने लोगों से
करना चाहता हूं बात एक साथ

◆◆◆

मेरी तरह
तेरे भी असली पेशे का
कुछ पता नहीं चलता

सुबह होती है
चले आते हो ग्वाले से
'दूध ले लो दूध'
हर तरफ फैला देते हो
दूधिया धूप

दोपहर को नानवाई के
तंदूर सा तपा देत हो

और फिर
हरकारे से
धूपछांव की इबारत में
बांटने लगते हो चिठ्ठियां
शाम ढलते–ढलते
बन आते हो चित्रकार

भई मैं तो
निहारते–निहारते
हुआ निहाल

कभी छाए हों बादल
आकाश में
डुगडुगी बजाने लगते हो

रात को जब पहनाते हो
चांद की अंगूठी
तारों के गहने
क्या कहूं
तब क्या लगते हो !

मेरी तरह
तेरे भी असली पेशे का
कुछ पता नहीं चलता
◆◆◆

अद्‌भुत तुम! अनिंद्य विश्वसुंदरी! अपनी उम्र और तमाम झुर्रियों के साथ!

हां तुम! एक संपूर्ण स्त्री जो सोच सकती है! सोच की हर हद को पुरखामोश अदा के साथ तोड़ भी सकती है! कहा था कवि ने वह स्त्री तुम्हें मार सकती है फिर जिला भी सकती है! कुछ ऐसी ही हो विस्साब शिंबोर्स्का!

कहते है स्त्री के गुण पुरूष में आ जाएं तो उसे संत बना देते है और पुरूष के गुण स्त्री में उतर आएं तो कहर ढा देते हैं

कहर की मारी दुखिया बेचारी इस दुनिया में तुम जो बांट रही हो मरहम...

ओ! विस्साव तेरे एहसास तैरेंगे हवाओं में और दुनिया के हर सत्ताधीश को एक न एक दिन करनी होगी घोषणा– 'पृथ्वी के नक्शे पर सरहदें अब जारी नहीं रह सकतीं'

आएगा वह दिन भी आएगा.. आने वाला समय हमारे समय जितना पागल तो नहीं होगा..

◆◆◆

(विस्साव शिंबोर्स्का की कविताएं पढ़ते हुए)

एक दिन
चीड़ की अलकों में गुम
खोज लूंगा तुम्हें
बादल बन भींच लूंगा
बहकूंगा चश्में सा मस्ती में
लुभाते हो यार! पहाड़!

ओ ! धरती के धन
उमंगों के मन
आदिम अट्टहास
न होते तुम
तो कैसी लगती यह पृथ्वी
न होता मैं तो कैसे लगते तुम

पर यह भी तो सच है
हर किसी ने चढ़ने हैं
अपने अपने पहाड़

हर किसी ने ढोने हैं
अपने अपने पहाड़
और चढ़ते चढ़ते पहाड़
एक दिन हो जाना है पहाड़

◆◆◆

वह जो बैठा है
सत्ता की ऊंची अटारी
देखता तमाशा

कैसे बेबस बानर–सेना
बनाती है काग़ज़ के पुतले
ऊंचे से ऊंचे
और बुराई पर
अच्छाई की जीत का
उत्सव मनाती है

रावण के ठहाके
पटाखों में गूंज उठते हैं
हमें लगता है
रावण जल रहा है
♦♦♦

कविता पढ़ना

एक कवि को ही नहीं,
उस रचना स्थल को भी
समय के उस पल को भी
पूरी सृष्टि के साथ पढ़ना है

कविता पढ़ना
समय की परिधि में
किसी छेद की तलाश है
जन्मों से भूखी
पागल अनूठी तलाश...

◆◆◆

वह जो सतत उपस्थित हमारी सोच में दिल में दिमाग में घर में दफ्तर में रिश्ते में प्यार में हर काम हर काज में हर कहीं..

यहां तक कि गांधी भी अपने ही बेटे के लिए कहते सुने गए–

'यदि वह मेरी इच्छा के विरुद्ध करता है शादी तो मैं भी भूल जाऊंगा कि वह मेरा बेटा है'

सच! हम हिटलर से कितना प्यार करते हैं

◆◆◆

चीड़ की अलकों में
मांग सी सड़क
दूर तक
बंदा न बंदे की ज़ात
पर हवा है

हवा है अजानी सी प्रिया
ठेलती गुदगुदाती
छेड़ती बतियाती
ठुमकती गाती
भागी चली जाती

बादल जैसे पागल प्रेमी
शिखरों को भींच भींच
चूम चूम जाएं

झरने यूं
कि बहके शराबी

और पृथ्वी !
चिड़िया इक बावरी
उड़ी उड़ी जाए

पहाड़!

जैसे चिड़िया के पंख...

आखिर यह माजरा क्या है

धरती की धड़कनों में

गुनगुनाता है क्या

आकाश यहां

अच्छा!

तो ये तुम हो!

◆◆◆

फिर से

मिल पाते वे दिन

तो खर्च करता उन्हें

संभल–संभल कर

एक–एक पल तराशता हुस्न

एक–एक पल झूमता इश्क़

हर दिन हर रात जीता कुछ यूं

जैसे जीते है पेड़ जैसे जीते है पंछी

जैसे जीती है तितली

जैसे बहती है हवा

जैसे गिरती है बारिश

जैसे गर्जते है बादल

जैसे कड़कती है बिजली

फिर से मिल पाते वे दिन..

◆◆◆

मेरे दोस्त! गुलामी बंदे की हो या बुत की या खुदा की, गुलामी ख्वाब की हो या बारूद की या किताब की हर हाल में गुलामी है

आज़ादी किसी बंदूक, किसी क्रांति या जेहाद की मोहताज नहीं होती..यह तो अपने ही दिल, अपने ही दिमाग की खुली हुई खिड़की का नाम है

जीवन, प्यार, ईश्वर और स्वतंत्रता एक दूसरे के पर्यायवाची हैं... यदि सच्चा है प्यार तो बिना जबर के भी बदल सकता है दुनिया...

◆◆◆

हवा पानी की कीमत

जो जानते हैं वही जानते हैं सच्चे प्यार का मोल...
सच कहा तुमने शिंबोर्स्का– सच्चा प्यार तो है ही
इतना दुर्लभ कि इसके भरोसे बैठे रहें तो दुनिया
लाखों बरसों में भी आबाद न हो सके...

◆◆◆

हम हंसे....

खूब हंसे

जबकि हंसने के लायक कुछ न था..

सुबह वैसी ही

दौड़ती भागती

(मछरी हुई घोड़ी)

दिन वैसा ही

खिंचा–तना

(भैंसा ठेला)

रात वैसी ही

बासी बासी

(जरनल डिब्बे का सफर)

पर हम हंसे...

बिन बात हंसे और जिये

◆◆◆

निच्छल हंसी

गुदगुदाती सी.. भूख पत्थर हज़म पलंगतोड़ नींद.. मनपसंद यारो--रोज़गार जीवन के सबसे अनमोल रत्न है... लुटा न देना कहीं सस्ते में... ताक में बैठे हैं लुटेरे बाज़ार के रस्ते में

◆◆◆

जलता है प्यार
इसकी फितरत है
मैं भी जलता हूं खूब जलता हूं

जलने के अपने दुःख हैं
दुःखों के अपने स्वाद
मेरा प्यार है इक तरफा
मैं इकतरफा ही जलता हूं

इसी रौशनी में
देखता हूं दुनिया

तिलिस्मी खोहों से पटी दुनिया
शैतान हुक्कामों में बंटी दुनिया
कुछ उजली कुछ काली दुनिया

समय की अजानी सी कोई धार
मेरा प्यार
सच्चा है और पवित्र भी

◆◆◆

आप मेरे सपनों में कभी आए नहीं!

मेरे सपनों में होता है बहुत कुछ.. जो आपकी नैतिकता, आपके सिद्धांत, आपकी आधुनिकता के बिल्कुल खिलाफ जाता है।

मसलन! मेरे सपनों में होते हैं बच्चे.. पीठ पर लादे भुतहे बस्ते.. हर पल होते है सोच में– होने तो दो मुझे कुछ बड़ा.. चींटी की तरह पल पल काटती इस दुनिया को जूते की एड़ी में कुचल डालूंगा!

यह बच्चे नहीं सोच पाते कभी.. कैसे एक फूल दूजे से करता है बात.. किस भाषा में पेड़ बादलों से करता संवाद.. कैसे उतरती है पत्ती–पत्ती बर्फ पहाड़ की पुकार पर.. क्या चलता है उनके बीच गुपचुप कि पिघलती है बर्फ और खिलखिलाने लगते हैं पहाड़!

मेरे सपनों में होती हैं लड़कियां जिनके मां बाप नहीं होते और अगर होते भी है तो मर रहे होते है धीमी आंच में...कभी आइए मेरे सपनों में...

◆◆◆

अभी तो सिर्फ़ टूटा है
चूरा नहीं बना

गुंधेगा जब आटे में आटा
तनेगा मांझा
तब काटेगा
किसी भी उड़ान की पतंग
तुनकती अंगुलियों के समेत .

अभी तो सिर्फ़ टूटा है....

◆◆◆

दूर किसी गली के भीतर इक और गली की नुक्कड़ के स्कूल में जब महफिल सजाते हो तब तो इस नाचीज़ को बड़े प्यार से बुलाते हो! और आज इस पटियाला महफिल में यूं नज़रें चुराईं जैसे हूं कोई चोर–उच्चका हरजाई ! .

अभी तो आंखों में भी दम है दोस्त.. हाथ को जुंबिश भी अभी बाकी है... इस अंदाज़ में तो न महफिले यारां से करो रुखसत कि कट जाएं और. .उफ् भी न करें हम !

पर इसे मज़ाक में लेना मित्र अपना मन तो आस्मां की तरह साफ खुला और खाली है.. दिल में इक ख्याल चला आया बादल की तरह उसने जो मांगे शब्द देने पड़े! अब यह पंक्तियां उतर ही आयी है तो दे रहा हूं तुम्हें!

तुम. सबसे प्यार भी तो है इतना जितना कि सूरज का धरती की हर चीज़ से होता है.. कितनी झेल पाओगे मेरे प्यार की धूप और कब तक? इक न इक शाम तो मुझे रुखसत होना ही है!

◆◆◆

(अज़ीज़ दोस्त शेख कल्याण के लिए)

मुझे शायद चोट खाने का शौक है! मुझे शायद ज़हर पीने की आदत है! यह कैसे लोगों से कर बैठता हूं मांग... कुछ पल दो मुझे भी सुनानी है अपनी कविता अपनी कहानी... करो मेहरबानी!

यह जानते हुए कि उनकी महफ़िले अदब का अंदाज़ आज भी मुग़लिया है, मैं यह कैसे जमहूरी सपने देखने लगता हूं!

पर आदतें तो आदतें है! उनकी भी, मेरी भी!

अरी आओ न! सब की सब आओ! मुझे करो संगसार एक ही बार... सर से पांव तक नहला दो मुझे मेरे लहू से!

यह लहू मेरे शब्दों की खुराक है! यह लहू मेरी भाषा की प्यास है! यह न दौड़े है रगो में, न आंख ही से टपके है, यह लहू तो मेरे कल की आस है..

◆◆◆

तीनों कम्पयूटर बैठ चुके है... डाटा फना! अब यह डायरी है... कलम है और मैं हूं! आंगन है.. नीम का पेड़ है..चिड़ियों की चहचहाट है खुला आस्मां है और धूप है!

प्यार हो या कविता पहली शर्त तो मुक्ति है!

शुक्रिया मेरे नए... मेरे पुराने मित्रो... मुझे मेरी औकात याद दिलाने के लिए!

फेफड़ों में ताज़ी हवा भर श्याम! तू तो है ही चिरंतन बिगिनर! जिंदगी हर पल नयी अछूती! हुस्न भी हर पल नया अछूता! इश्क भी हरदम ताज़ा जिंदादिल और बेबाक चाहिए!

महफिल तो चाहिए! सुनने वाले चाहिए, सुनाने वाले चाहिए! पर अब यह महफिल अपनी होगी! छोटी होगी पर तंगदिल न होगी! बैसाखियों पर न होगी! चुने हुए सुनने वाले होंगे, चुने हुए सुनाने वाले होंगे... अदब होगा अदब का अंदाज़ होगा नए गीत होंगे नया साज़ होगा

◆◆◆

स्वप्नदर्शी आंखों से शून्य को निहारता... शब्द को दुलारता भाषा को निखारता... धूल भरे मन को गीत से बुहारता... लोग कहें पागल है बावरा... बेचारा कवि... क़लम की नोक से यह दुनिया संवारता है! क़लम की नोक से कोई दुनिया संवारता है?

◆◆◆

कुछ न हो करने को तो सपने देखो अंबिया की डाली पे कोयल की कूक हो थोड़ा सा साया हो थोड़ी सी धूप हो... पहाड़ के दामन में झरने सा मीत हो कुआंरी हवाओं का अल्हड़ सा गीत हो आवारगी हो बादल की बस प्रीत ही प्रीत हो कुछ न हो करने को तो...

◆◆◆

प्यार तो झरना है

ठंडा मीठा जल.. मासूम और अकेला.. तिलिस्मी परतों में दबा .. पर उसमें नहीं इतना आवेग कि भेद कर परतें निकल आए शिखर तक और कहे– आओ! प्यासी आत्माओ.. मुझे पियो... हो जाओ तृप्त! उसकी गति है अधोमुखी और हम शिखरोन्मत्त!

नत होना हमें नहीं आता.. प्यार करना हमें नहीं आता!

◆◆◆

तुम सजाओ शिखरों के स्वप्न
बजाओ संघर्षों के बिगुल
जाओ बैठो "तुंग शिखर के
खुरदरे कगार तट पर"
करो पार "पर्वत संधि के गह्वर
रस्सी के पुल पर चल कर"
पर मुझे माफ़ करो

लुढ़क रहा हूं... लुढ़कने दो
टकराने दो पेड़ों से
पत्थरों से... चट्टानों से
हो जाने दो चूर चूर
नदी के मटमैले जल में
घुल जाने दो मुझे
खो जाने दो समुद्र के अतल में

वहीं से उठूंगा एक दिन
एक नहीं सभी उन्मत्त शिख़रों पर
रखूंगा एक साथ अपने पांव

◆◆◆

नेता जी

आप हैं

नदी है

लहरें हैं

भंवर है

और सूखा है

◆◆◆

कहते रहे तुम

मत करो छेड़छाड़ मेरी सादगी के साथ

पर नहीं माना किसी ने! सुना तक नहीं! कटवा ही दिये महंतों ने सदियों पुराने चिनार!

सुधार कमेटी के लम्बरदारों ने टाइलों की बची–खुची किरचों से बींधकर तुम्हारी छाती टांग दिए बोर्ड– 'यहां पर नहाना और कपड़े धोना मना है'

पहली बार मैंने जाना उदासी कैसे काई सी सतह पर टहलती है।

याद है [1]नागबल! आधी छुट्टी की घंटी! और वे नंग धड़ंग किलकारियां झुंड की झुंड!

जैसे डाल्फिनों की आत्माएं!

वे छपक–छपाक छलांगें वह रेशमी ठिठुरन और [2]'शीर चाय' सी धूप!

उल्लास के इस मेले में शामिल तुम नंगधड़ंग बच्चों की मस्ती में गुम कितने मासूम लगते थे!

वह शब्द सा पवित्र जल.. वसंती स्पर्श की लहरीली अठखेलियां!

वे चांदनी के चुंबन.... काले [3]फिरन सी रातें! लाल स्कार्फ में लिपटी भोर!

प्रतीक्षाएं! जैसे लहलहाते धान की सुगंध!

कितना सांझा था बर्फीले सन्नाटों में बुना संगीत

बहुत याद आते हो नागबल! पथरीले विस्थापन की बौखलाई दोपहर में बहुत याद आते हो!

◆◆◆

1 नागबलः—अनंतनाग का सदानीर कुण्ड

2 शीरचायः गुलाबी नमकीन चाय

3 फिरनः—बहुत खुला कुरतानुमा वस्त्र

पथ भुजंग
पाथेय विष
कैसे आऊं तुम तक
अमा निशा गिरी उतंग
पथ भुजंग

◆◆◆

हर कोई अपने अपने ढंग से जीवन जीता है। हर किसी में परमात्मा ही जी रहा है। एक अलग अदा, अलग से अंदाज़ में! इसलिए किसी तुलना का अब मेरे लिए कोई अर्थ नहीं है।

◆◆◆

जिंदगी रहस्यमयी दुल्हन है जिसके एक एक संकेत में अद्‌भुत सौंदर्य है

◆◆◆

इतनी दलदलों के पार यह प्यार इतना कड़वा क्यों है यार

◆◆◆

मैं जिंदगी से मुंह कभी न मोडूंगा
न डर के हादसों से राह छोडूंगा
मेरी डगर मेरा सफर तेरे लिए
मैं टूटते दिलों को फिर से जोडूंगा

भले ही उम्र अब मेरी जवां नहीं
भले ही दिल में वलवले तूफां नहीं
हैं आरजू के खंडहर हर तरफ
भले ही सिर पे छत नहीं, मकां नहीं
नहीं है पस्त हौसले मेरे अभी
भले ही मेरे मुंह में जुबां नहीं

मैं ईंट–ईंट बीनकर वक्त की
नयी सदी को सच की राह मोडूंगा
मेरी डगर मेरा सफर तेरे लिए
मैं टूटते दिलों को फिर से जोडूंगा

मैं पर्वतों को लांघ छोड़ आया हूं
मै दलदलों को नाप तौल आया हूं
हूं रास्तों की मुश्किलों से बाखबर
मै रास्तों को मंजिलों से जोडूंगा
मेरी डगर मेरा सफर तेरे लिए
मैं टूटते दिलों को फिर से जोडूंगा

मैं जिंदगी से मुंह कभी न मोड़ूंगा
न डर के हादसों से राह छोड़ूंगा

◆◆◆

सिलवटें यों

मेरे पैरहन में न देख

मैं समुद्र सा

बड़ी दूर तक फैला हूं दोस्त

◆◆◆

मैं तो जीवन का कवि हूं

जीवन की बात करूंगा.. जीवन से प्यार करूंगा.. अंधेरा है घना अगर सवेरा भी दूर नहीं..निराशा अंधकूप नहीं.. आशा दुष्पूर नहीं रास्ते है कठिन बेशक थक कर मैं चूर नहीं एक एक पल जैसा भी मिलेगा कृतज्ञ हृदय से स्वीकार करूंगा.. मैं तो जीवन का कवि हूं जीवन से प्यार करूंगा

जब तक जियूं मैं विस्मय मेरा बना रहे.. आने जाने का यह क्रम.. भ्रम भी हो तो बना रहे.. प्यार का भी आएगा मौसम इंतज़ार करूंगा

मैं तो जीवन का कवि हूं

◆◆◆

हर पल
इक तीर है तेरे तरकश में
समय के वरदान सा
हर काम जो तेरे सामने हो...
हो चिड़िया की आंख सा

◆◆◆

कोई चलता है मेरे दिल के बंजर अंधेरों में

टोह लेते हुए किसी शातिर चोर की तरह..

क्या ढूंढता है अंधेरों को भेदता हुआ?

वहां देखे मैने करंसी नोट उन्हें रौंदता हुआ..

नग्न प्रतिमाओं के भव्य सौंदर्य की करता उपेक्षा..

ज्ञान के भंडारों को ठेलता धकेलता..

विज्ञान और तकनीक के सभी आश्चर्यों पर

हंसता हुआ ...

आख़िर किसे खोज रहा वह चतुर चोर..

मेरे दिल के बंजर में किसे खोज रहा है?

◆◆◆

मैं

कीचड़ ही सही

तुम तो कमल हो..

पोषण तो मुझ ही से लोगे

मेरे बिना जियोगे कैसे?

मैं था..

तेरे बिना भी था..

रहूंगा तेरे बिना भी रहूंगा

पर तेरा क्या होगा कमल

मेरे बिना?

◆◆◆

मेरे भीतर का शून्य

किसी अंक से न जुड़ा

कोई संख्या न बना..

घूमता है गोल–गोल अपने ही दायरे में

मशीन की गरारी सा मेरे भीतर का शून्य..

न जलता है न बुझता

बस धुआं–धुआं मेरे भीतर का शून्य

◆◆◆

जवां हुआ

तब कहीं फूटे शब्दों के अंकुर..

अर्थ फल पका जब

ढल चुका था मैं!

तेरा यह अंदाज़े बयां!

चिता पर लेट कर भी

मुझे आएगी हंसी..

ऐ जिंदगी!

तेरी चालाकियों से कितना बाखबर था मैं

◆◆◆

बर्फ जो हर साल

किसी दोस्त सी उतरती थी

कहवों और कहकहों के बीच

इक शाने बेनियाजी के साथ

सेबों को बांटती लालिमा

धान को जीवन के गीत

इस बार गिरी थी किसी लेनदार सी

जैसे आडिट की

कोई मुहिम चली थी आस्मां में

जैसे पूछ रही थी

मेरी इस घाटी को

रक्त–रंजित करने का अधिकार

मेरे ही बंदों को बेघर,

दरबदर करने का अधिकार

तुम्हें किसने दिया था

बर्फ जो गिरी थी इस बार

जैसे पहाड़ों के पास

दाग धोने के लिए भी

बचा नहीं था पानी

बर्फ जो हर साल

किसी दोस्त सी उतरती थी

इक शाने बेनियाजी के साथ

इस बार गिरी थी किसी लेनदार सी

◆◆◆

बे–ज़ीनो–रिकाबो–लगाम
वह पागल घोड़ा
कोई दीवाना ही इस पर करता है काबू

और मैं
इसी घोड़े का चिरन्तन घुड़सवार

सूरज से धूप नहीं लेता हूं आग
जो शब्द को कुठाली
और मुझे भस्म बना देती है

तारों की छननी से छानता हूं स्वयं को
तब....

तब लिख पाता हूं
इक्का दुक्का कोई शब्द..कोई टुकड़ा

चुप से ज़रा बेहतर
◆◆◆

हंस रही हैं
धुआं उगलती चिमनियां

हवा बद–हवास

कटे पेड़ों की कराह में
सिमट रहा जंगल
पहाड़ अपने नंगेपन में उदास
बजा रहे अजीब सी मातमी धुन

पीछे मुड़ कर देखा नदी ने
अपने भीतर समा रहा
सारे शहर का मलबा
और सूखने लगी

समुद्र की फेन उगलती लहरें
जैसे असंख्य–असंख्य प्रश्न चिन्ह

डोलती पृथ्वी
जैसे खौल रहा भीतर दर्द का लावा

चांद व्याकुल पथराई चांदनी

सबके सब अपनी–अपनी चुप्पी में
पूछते बस एक ही प्रश्न

अरे ओ आदमी !
क्या तुझे जीने का अधिकार है?

♦♦♦

ओ जंगल मेरे भीतर के जंगल
कितना विस्तार..
कहां से चलूं किधर पहंचूं
कैसे देखूं तुझे आरपार..
आंख तो बस बुनती है
दृश्यों के मकड़जाल..
वानरी इच्छाएं.. भेड़िया विचार..
चीताई अहंकार
पर मुझे तुमसे है प्यार

ओ जंगल !
सामने पहाड़ी से उतरी है गूजरी!
सिर पर रखा सूरज का मटका!
मटके में अटका सारा काम जगत का!

उबालोगी कितना ओ हसीना!
पसीना हाए पसीना!
क्या इसीसे भरोगी मटका?
लो भटका मैं भटका!

आह! कैसा सुनसान यह
बेजान पत्थर भी बोलते बतियाते

वहां भीड़ इतनी सभी मौन साधे

यह बारिश के बाद की रात
जैसे रो रोकर सो गया कोई बच्चा
भूलकर कोई चुभती सी बात

अचानक क्यों ठिठके हिरण
सूंघने लगे हवा में गंध!..
अरे! यह तो चल पड़े उधर
जिधर से आ रहा है बाघ?

क्या तुम जानते हो जंगल!
आदमी पृथ्वी को
सूर्य में बदलने की भाषा है..

तुमसे बेहतर जानता है कौन
धूप का इतिहास...

ओ जंगल! मेरे भीतर के जंगल

◆◆◆

लाद कर
मेरी पीठ पर
गर्म सुलगते रिश्तों की
भट्ठी से निकली तर–ब–तर
पछतावों की गठरी का भार
हांकती मुझे कालिंदी के छोर
बांध कर मेरे पांव में कदम भर डोर

कहती जा विचर
दूर तक फैली रेत में
तलाश कर दूब और चर

हाय! उसकी यह
बादलों की ओट में धूप सी अदा
और हरी हरी घास का सपना
मेरी आंखों में कीच बन जमने लगा
संवलाए जल में
अधडूबे पत्थरों पर
पछतावों की पछाड़
झनझना देती
मेरे भीतर का तार–तार

अलापने को होता है मन

ऐ..री प्यारी हत्यारन

सुरमई जल में
आत्ममुग्धा सी निहारती है क्या
सांझ ढली देर हुई चल अब घर चल

◆◆◆

प्यार के बदले प्यार
सब करते है

नफरत के बदले नफरत
सब करते है

प्यार के बदले नफरत
कोई विरला ही करता है
जैसे तू

नफरत के बदले प्यार
विरलों में कोई विरला
जैसे मैं

◆◆◆

मैने चाही कविता
उसने मेरा सब छीन लिया
थमा दी बित्ता भर धूप
ज़रा सी हंसी

धूप की गवाही में
मैने बोयी हंसी
उगाए जंगल
न आर न पार

पर विश्वास है मुझे
यहीं कहीं होगी मेरी कविता
मधुमक्खियों के छत्ते सी

बनफ्शां या गुच्छियों सी

या फिर पांव के आस पास
पुर्ननवा सी
◆◆◆

ओ. पी शर्मा विद्यार्थी को समर्पित

मेरे पास
एक महीन सी
रोशनी की धारा है
जिसे पकड़ पाना
हर ऐरी गैरी आंख के बस का नहीं

हां! आदमी की आंख
सचमुच के आदमी की आंख
बिना लेबल के
आदमी की आंख के लिए
वह प्राप्य है सहज ही

कहीं दिखता ही नहीं वह आदमी
वह सचमुच का आदमी
और उसकी आंख

◆◆◆

तुम तो
संकेत का सौंदर्य हो
व्यक्त अव्यक्त का अद्‌भुत संतुलन
बादलों की ओट में धूप की अदा
या
पहाड़ का मौसम

अब तो तुम हो और यह दिल
अब तो तुम हो और यह आंखें
अब तो तुम हो बस तुम
◆◆◆

दिल फिर तवाफे कूए मलामत को जाए है
पिंदार का सनम कदा वीरां किए हुए—
गालिब

बरसों पहले का अपना वह समय याद आ रहा है, जब किसी को पत्र लिखने के प्रयास में दिन रात में रात दिन में डूब जाते थे। ढेरों काग़ज़, ढेरों शब्द, चिंदी चिंदी हवा में तैरते रहते थे। आज यह पत्र लिखते हुए लगता है वही उल्लूपंथी दिन स्वयं को दुहरा रहे हैं। वही उहापोह... क्या लिखूं क्या न लिखूं! औपचारिकता, शिष्टाचार.. श्री और जी की मूंछ और पूंछ का ध्यान रखूं या फिर मायकोव्स्की वाली 'धड़ाम'.. सभी कुछ साफ–साफ जैसा मन में आए वैसा ही या इस बात की चिंता करूं कि पढ़ने वाले को कैसा लगेगा... आखिर यह कोई मामूली नहीं (तेज तर्रार सावधान पंजों वाले बिल्ले बिल्लियों से आबाद दिल्ली में बसी) किसी कवि–आत्मा से परिचय बनाने, संवाद स्थापित करने का प्रश्न है

दिल्ली और कविता... छत्तीस का आंकड़ा है "अनुष्टुप" पढ़ने से पहले मेरी यही सोच थी.. ध्वस्त हो गई.. एक–एक कविता पढ़ी अपने भीतर अपने ही टुकड़े बटोरे.. रचना के विज्ञान से शिकायत की...क्यों कुछ लोगों को गढ़ते समय यूं नशे में धुत्त हो जाते हो.. सभी कुछ उन्हीं पर लुटा बैठते हो मुझ जैसों के लिए कुछ भी नहीं! न कविता...न डिग्री..न दिल्ली.!

किन शब्दों में अपने आस्वादन को व्यक्त करूं? एक हल्की सी क्षमा के साथ इसी पुस्तक की अंतिम पंक्ति का प्रयोग करते हुए.. "तन्मय एकांतों का महारास" हैं यह कविताएं...

दूर–दूर तक इनमें कहीं कोई मन नहीं, दूर–दूर तक इनमें कहीं कोई चित नहीं.. बस है तो शब्दों में ढली आत्मा, बरसती... छलकती आत्मा; नर्तकात्मा की थिरक हैं यह कविताएं! जैसे पहाड़ी बरसात की मोटी–मोटी पारदर्शी बूंदे... एकाएक बर्फ की पंखुड़ियों में बदलने लगें...तैरने लगें.. स्तब्ध कर दें, जमा दें एक–एक कविता देखता हूं और जी मे आता है, बस देखता रहूं और डूब जाऊं...समाधिस्थ हो जाऊं

कविता दूसरों के लिए क्या है! क्या नहीं! नहीं जानता पर मेरे लिए तो यह जोनाथन की उड़ान है... हेमिंग्वे का बूढ़ा मछेरा है... मेरे लिए तो कविता अग्निशेखर का शेरपा है... सर्वेश्वर की पगलाई कोयल...या फिर बुद्ध की आंख का वह आंसू जिसके लिए प्यारे 'गालिब' ने कहा है

रगों में दौड़ते फिरने के हम नहीं कायल.
जब आंख ही से न टपका तो फिर लहू क्या है

बादलों की घटाटोप में बिजली की कौंध किसी भी रूपाकार में हो मेरे लिए कविता है।

लोग कहतें है, चालीस के पार आदमी को भावुक नहीं होना चाहिए.. सोचता हूं, यदि दुनिया को नरक से मुक्त होना है तो चालीस के पार आदमी को गणित में नहीं होना चाहिए। इस गणित ने जीवन की सारी कविता सोख ली है.. हर कहीं इसी का घुन लग गया है।

जो भी हो, दिल्ली जैसे ठूंठ में अनुष्टुप कविताएं! एक सचमुच की वाह के साथ... जैसे चट्टानों मे खिला फूल!

कभी, आधी रात नींद खुल जाती है तो आंगन में चला आता हूं ... अस्तित्व के वैभव को निहारता हूं... यह रात सृष्टि की सबसे बूढ़ी चीज है.. लेकिन, हर बार सद्यस्नाता, नई नवेली सी लगती है अनामिका की अनुष्टुप कविताएं भी कुछ ऐसा ही सुख दे गयीं...

◆◆◆

पृथ्वी की तरह
मेरी भी सोच
घूमती है गोल गोल
अपनी ही धुरी पर

बदलते है सोच के मौसम
दिन और रात

सोच के है
अपने जंगल पहाड़
नदी नाले और समुद्र..

क्या तेरी सोच में भी
घूमती है पृथ्वी?

◆◆◆

एक कवि की
चाहे जो भी उम्र हो
पर उसके पास
हर उम्र का मन होता है

◆◆◆

खरा लोहा
देर सवेर चिपक ही जाता है
कामकाजी दुनिया से
जो लोहा नहीं
पड़ा रहता है जैसे मैं

◆◆◆

तू मेरी कलम
मैं क़ाग़ज़ तेरा

आड़ी तिरछी तू
चलती ही रहती है मुझ पर
और मैं तेरे प्रेम में
छिला जाता हूं भीतर तक

तू जैसे शब्द–मुण्डमालिनी
मैं शिव पद–दलित

◆◆◆

तू मेरी चाय गर्मागर्म
मैं तेरा कप तापहरण

धीमे धीमे पी जाती है तू
चुस्कियों में
मुझे करते हुए रिक्त

और मैं
रख दिया जाता हूं
वाशबेसिन में धुलने के लिए

◆◆◆

नर्म कोंपलों
और ताज़ा पत्तियों से छन कर
उतर रही है
मेरे आंगन में सुनहरी धूप

कुछ देर चहकेगी..उकताएगी
और चल देगी
मुंडेर पर गाने वाली चिड़िया

क्या हुआ है हवा को आज
बादलों की आवारगी का
सबब क्या है

कुछ तो बता.. ऐ सुनहरी धूप
ओ! गाने वाली चिड़िया

◆◆◆

वह एक पल
जब उस कलाकार ने
तुम्हें कैमरे में उतारा होगा
कितना कुछ तय कर गया
मेरी मंज़िलो--मुकाम का रुतबा
तुमसे मेरा रिश्ता मेरी महबूब

अखबार में छपी तेरी तस्वीर!
मैं तो देखूंगा तेरी तस्वीर
और शब्दों को करने दूंगा अपना काम
जिन्हें मैंने जन्मों से पाल रखा है
मधुमक्खियों और तितलियों की तरह

कितनी मुंगफलियों का लिफाफा
बनी होगी तेरी तस्वीर!
यह जो मेरे हिस्से में चली आयी है
बनाएगी कितने लिफाफे मेरे दिल के..

ओ मरीचिका!

◆◆◆

कोई तो होगा रिश्ता
मेरा तुम्हारा..
अदीठ सा न्यारा सा..
वर्ना क्या!
इक झलक तेरी
और यूं गंवा देता दिल!

इस दिल की डायरी में
कितने कितने
सुंदर चेहरों की कतारें हैं
नीली झील में
सफ़ेद बतख़ों सी

चली आ
तू भी राजहंसिका
खुले आसमान में
भीगे बादल की तरह
मेरी कल्पना को दे पंख
◆◆◆

तेरा यह खुशगवार माथा, मेरी दोस्त!

आंखों में झलकती है दिमाग की सेहत और छलकता है सोच का खुलापन.. अपने यहां इसी का तो घना टोटा है...

तुम गोरे इतने लम्बे, खुशहाल और तंदरुस्त कैसे हो जाते हो? शायद इसीलिए थोड़े थोड़े..

अकसर यह तेरा देश मेरे नादान सपनों में क्यों चला आता है...

◆◆◆

तुम्हें पुकारते हुए

जिनसे होती है मुलाकात
यह मेरे दिल की तहों में छिपे राज़ हैं!

या
भीगने को बेताब मौसम में
अबाबीलों के बच्चों की उड़ान!

या
दूर किसी पहाड़ में बसे
गांव के लोगों के भोले डर
जो शहरी उजालों से डरते है

◆◆◆

जी करता है

उड़ आऊं... तुम तक! एक चुम्बन लूं तुम्हारा गहरा.. बहुत गहरा... भींच लूं तुम्हें इस कदर कि या तो तुम मेरे वजूद में घुल जाओ या फिर मैं ही खो जाऊं तेरे एहसास की तनहाई में! माचिस पर रगड़ खाती तीली की तरह वर्जनाओं के जंगल में लगाते हुए आग..

जी करता है

◆◆◆

पूछा उन्होंने

जिसकी तस्वीर ने .
तेरा यह हाल किया
वह अगर सामने आए तो क्या होगा?

कोई आए तो सही यार..

मैं किसी भी चेहरे से
जिससे किया जा सकता है इश्क़...
किसी भी शब्द से
जिससे किया जा सकता है प्यार...

प्यार ही तो कर सकता हूं
◆◆◆

तुम मेरे सामने होती
तुम से बात करता
तो क्या करता

शायद तुम्हें देखता
ठगा ठगा सा
और चुप का चुप रह जाता...

यदि तुमको मुझसे बात करनी होती
तो...
क्या करती...

◆◆◆

तुम्हें करते हुए याद
मुझे लगता है डर
तेरी नींद में जाकर
मेरी याद कोई बवाल न कर दे..
तुम कहीं भटक न जाओ
किसी सपने के बेतरतीब
डरावने और खूबसूरत जंगल में
हमारे बीच की यह दूरी
किसी और यात्रा का रुख न कर ले
डरता हूं ...तुम्हें करते हुए याद
◆◆◆

तुम्हें करते हुए याद..

वह खूबसूरत दढ़ियल सा चेहरा भी चला आया है स्मृति में ..अपने उस पत्र के साथ जो उसने अपने बेटे के शिक्षक को लिखा था...वाल्डेन का वह संत भी और वो मछेरा भी... जो उम्र भर समुद्र में मशक्कत के बाद किनारे तक एक मछली का कंकाल ही ला पाया था मेरी तरह...

होंगे और भी बड़े–बड़े कद्दावर लेखक और शायर तेरे देश में, लेकिन, मेरी पहुंच उन तक नहीं... दूरियां भी तो कितनी है .. और कितनी कितनी किस्मों की

◆◆◆

तुम मेरी प्रतीक्षा हो
अनंत और वाचाल

प्रतीक्षा और धैर्य
पेड़ और पहाड़ के गुण हैं
मैं तुम्हारा पहाड़ हूं
◆◆◆

पहाड़!

शहर जैसे नहीं होते बुलबुल!

शहर तो भागते हैं..

उनका समय भागता हैं..

लोग भागते हैं..

इमारतें भागती हैं... सड़कें भागती हैं ..

कौन किसे कुचलता हुआ भागता है..

किसी को कुछ ख़बर नहीं रहती

तुम्हारे यहां भी तो यही कुछ है!

सच तो यह है

दुनिया शहर में बदल चुकी है!

शहर चूहेदानियों में!

पहाड़ भी तो खोने लगे हैं अपना वजूद!

रफ़्तार का सैलाब

यहां पहाड़ों और जंगलों में भी आता है

पर यह उनकी आदत नहीं!

चलती हैं हवाएं..

पेड़ों को जड़ों से उखाड़ते हुए चलती हैं!

बरसात की तो बात ही मत पूछो!

और बर्फ!

खैर यह क्या हाल मौसम का

सुनाने लगा हूं तुम्हें..

सोचा था

इश्क़–ओ–मुहब्बत की बातें करूंगा

पर यह क़लम!

◆◆◆

मन द्रौपदी...

क़लम दुशासन

भरी सभा में

इसे नंगा करने पर तुली!

प्यासी महत्त्वाकांक्षा, विवशता,

पहाड़ जटिल

लगे जो दांव पर पांचाली

तो क्या करे युधिष्ठिर...

◆◆◆

समुद्रों पार तुम!

तुम्हें मेरी क़विता ने क्यों चुना!

मेरे सन्मुख यह प्रश्न यक्ष!

मुझे तो बात करनी थी 'पत्थर तोड़ती की'...

मुझे तो बात करनी थी 'हाथ फैलाए दरिद्रता की'...
मुझे तो बात करनी थी

अपने ही मुहल्ले की उस औरत की

जो कपड़े सिलकर अपने बच्चे पालती है

और मैं उस का नाम तक नहीं जानता!..

फिर...

फिर मेरी कविता ने तुम्हें क्यों चुना परदेसन?

◆◆◆

अभी तो निकलना होगा मुझे बात को अधूरा छोड़ते हुए.. प्रश्न प्रति प्रश्न मुझे मिलता है आनंद..

एक ख़्याल की दुम पकड़ता हूं .. दूसरे के सींगों पर उछाल दिया जाता हूं!

मुझे रौंदते मेरे यह विचार विल्डर बीस्ट्स है... हजूम के हजूम पता नहीं किस दिशा से आते है कहां खो जाते है?

पर अब मुझे जाना होगा.. वर्क कल्चर की धूप मेरी पीठ पर चाबुक सी धमकने लगी है!

◆◆◆

शुक्रिया दोस्त!

अनाम ही सही कलाकार तो हो.. मेरे दिल की डायरी में स्वागत है तेरा! धन्यवाद तेरे कैमरे का, न्यूज़ ऐजेंसी का, अख़बार का अख़बार बांटने वाले का...उस कैंची, कागज़ स्याही और गोंद का... सबका धन्यवाद! धन्यवाद उस पल का!

◆◆◆

पर यह क़लम!

इसका सफ़र तो लम्बा है! उन प्यार करने वाले चेहरों की कतारें.. शब्द की तलाश में मूक आंखों से कर रही हैं प्रतीक्षा!

◆◆◆

लिपटा यह दायां हाथ

मेरी कमर में तुम्हारा.. मेरे बाएं हाथ पे धरी है तुमने सुराही गर्दन.. तुम्हारा यह गुलाबी चेहरा मेरी आंखों में.. सांसों में डूबने लगी है सांसें

कोने में खड़ा वह पंचायती बघेरा पीसने लगा है दांत.. देखो तो कैसी है उसकी यह डरावनी शक्ल! पर अब मुझे उसकी गुर्राहट की कोई फिक्र नहीं..

प्यार करने वाली हुतात्माओं के शाप इसके सिर चढ़ चुके हैं...

चाहे जैसी मुद्राएं बनाता रहे इसका धड़ तो अब हो चुका है पत्थर!

और उस कोने में स्टैटस सिंबल वो शहरी भालू! नाच रहा पता नहीं किस मदारी के इशारों पर?

पर अब मुझे नहीं है किसी की चिंता मैं तो करूंगा तुमसे प्यार...

बार बार...हज़ार बार!

◆◆◆

तेरी तरह

मुझे भी बच्चों से बहुत प्यार है

फिर चाहे वे हों

किसी भी रंग रूप और नस्ल के

बस उनका कोई

मज़हब नहीं होना चाहिए

◆◆◆

वे कहते है

मुझे ऐसी कविताएं नहीं लिखनी चाहिए उनकी भावनाओं को पहुंचती है चोट!

भाड़ में जाएं उनकी भावनाएं.. उनके संस्कार!

जब कुंआरे बच्चे बूढ़े होते दिखने लगें.. हर दिन भरे हों अख़बार बलात्कार की ख़बरों से! जब शक, हवसो–हसद की हवा में घुट रहा हो हर किसी का दम... उनकी भावनाओं और वर्जनाओं का अचार तो नहीं डाला जा सकता?

◆◆◆

वे जो हर चीज़ को बाज़ार बना देते है, उनके चटके हुए प्यालों में नहीं पी सकता मैं जिंदगी का जाम!

मेरी प्यास! उनके पैमानों के बस की नहीं मेरी दोस्त!

कहीं तुम भी, उन्हीं में से तो नहीं!

◆◆◆

प्यार करना
और कविता लिखना
प्यार करते हुए कविता लिखना
कविता लिखते हुए प्यार करना

हर दिन
नये उन्माद
नयी उम्मीद के साथ
यही है मेरा सफ़र

जहां रुकता हूं
तेरी तस्वीर देख लेता हूं
और चल पड़ता हूं
जीने का यह भी तो
एक सलीका है

◆◆◆

प्यार और कविता
दो उत्तुंग पेड़ों की
पहाड़ दूर फुगनियों में फंसी
मेरे होने की डोर..

मुझे आना जाना पड़ता है
सांस की तरह आर–पार
बार–बार इसी पर चलकर
◆◆◆

प्यार और कविता!
आसमान को
गोलाइयों में तराशते
मेरे यह पंख!
किन ऊंचाइयों में ले आते है मुझे..

नीचे देखता हूं
और तलाशने लगता हूं..
हिंसा प्रतिहिंसा और शोषण के
इस जगंल में
कहीं तो खिले हों
सद्‌भावना और प्रीत के फूल!

कोई तो विकल्प हो..
इस जलती हुई दुनिया को
जीने की राह सुझा दे...
जीवन का अर्थ बता दे!

वैसे मेरी यह दीवानगी
ताज़ी ठंडी हवा के झोंके से कम नहीं!
◆◆◆

रब से रब को मांगा था एक दिन
मुझे कवि बना कर रूठ गया
आज तुम्हें मांग रहा हूं रब से
यह जानते हुए कि
मांगने से खतरनाक
कुछ भी नहीं दुनिया में

मुझमें यह
आग से खेलने का जनूं क्या है..
क्यों सूरज बन जलना चाहता हूं..
क्यों बनना चाहिए तुम्हें
मेरे चक्कर लगाती हुई बेचैन पृथ्वी!

◆◆◆

यूं ही नहीं
चला आया तुम तक..

जिस दिन देखी थी
उस डूबे हुए जहाज़ की प्रेम कहानी
उसी दिन मांगी थी
दुनिया भर के कवियों कलाकारों से
दिल खोलकर माफ़ी..

मृत इतिहास में से
प्यार को जीवित कर देने वाले
रब से कम तो नहीं होते...

◆◆◆

चेहरे तो बहाने है
कविता है मेरा इश्क़

पर कभी
उलट भी जाता है गणित
कविता के बहाने
हो जाता है इश्क़ चेहरे से

हर दिन
कितने भाव कितनी भंगिमाएं
टके सेर बिकती हैं
पर चेहरा एक भी नहीं
सब आंकड़े नज़र आते है

चेहरों की कमी?
न!

काली भेडों ने
उजालों को ढांप रखा है

◆◆◆

सृजन और सांत्वना

कसे हुए दो गोलार्धों में जैसे बंटी हुई पृथ्वी! काश!
मेरे भी होते गुलाब की पंखुड़ियां होंठ...

इतना सुंदर तुम्हें जिसने बनाया.. उसी ने तो बिठा
रखे है मेरी आंखों के कोटर में अगस्त्य.. पिए जाते
है समुद्र.. फिर भी प्यासे?

मैं लिख पाऊं तुझसे भी सुंदर तेरी कविता! जिसमें
दुनियादारी के पचड़े न हों विरोध अवरोध न हों,
वैर न हो.. बस प्यार हो और प्यार का कोई रंग
छूट न जाए

◆◆◆

यह रब!

सब इसी की शरारतें है! कलाकारों का यह कलाकार.. सजाता संवारता... भागता.. दौड़ता.. तोड़ता... जोड़ता.. असंख्य असंख्य हाथों से, फिर भी नज़र नहीं आता! यह सुंदर चेहरे उसी के तो करिश्में है! इन्हें अगर दिल में सजाता हूं तो क्या गुनाह करता हूं ..

◆◆◆

सारी नैतिकता, अनैतिकता, धन, धर्म, पद–प्रतिष्ठा और अधिकार के तमाम पागल कांटों के पार यह जो सतरंगा गुलाब है इसकी गंध मुझे बौखलाए रखे है सफर के इस मोड़ पर भी..

मैं छूना चाहता हूं इसे जैसे कोई चित्रकार छूता है तूलिका से अपने रंग...

सूंघना चाहता हूं इसे अपने जीवन की सबसे गहरी सांस में ...

◆◆◆

आज यह मेरे ही कपड़े मुझे फाड़े जाते है.. मैं जैसे बर्फ़जमी ढलान पर दौड़ती ब्रेकफेल कार.. कितने चक्र कितने घुमाव .. लुढ़क रहा हूं प्रकाशवेग से गहरे और शर्मनाक अंधेरे में ..

वह औरत..वह पगली औरत इस राजमार्ग पर.. नंगे पांव.. जून की दोपहर.. पता नहीं किन ख्यालों में गुम चली जा रही है.. नहीं जानता कब से है भूखी ..कब से नहाया नहीं उसने!

हाय! यह जीवन..एक स्त्री का जीवन! एक सृष्टि बर्बाद और मैं कुछ नहीं कर सकता! नहीं जानता.. वर्जनाओं की कंटीली तारों में कितना करंट छोड़ रखा है उन्होंनें?

पर मुझे कुछ करना है..मामला किसी पीनल कोड़ की धारा का नहीं..तौहीने इश्क़ का लगता है... किसी सोनामी..किसी भूकंप की मांग करता हुआ...

◆◆◆

इतनी तकनीक इतना विकास
समुद्रों पार तुम!..हो कितनी पास

और एक वो..
कल जो मिली थी..
उलझे बाल फटे हाल..
चेहरा!
इतना इतना उदास..

चल रही थी पैदल
जून की दोपहर
मेरे गली मुहल्ले से ज़रा बाहर
पर कितनी कितनी कितनी दूर

◆◆◆
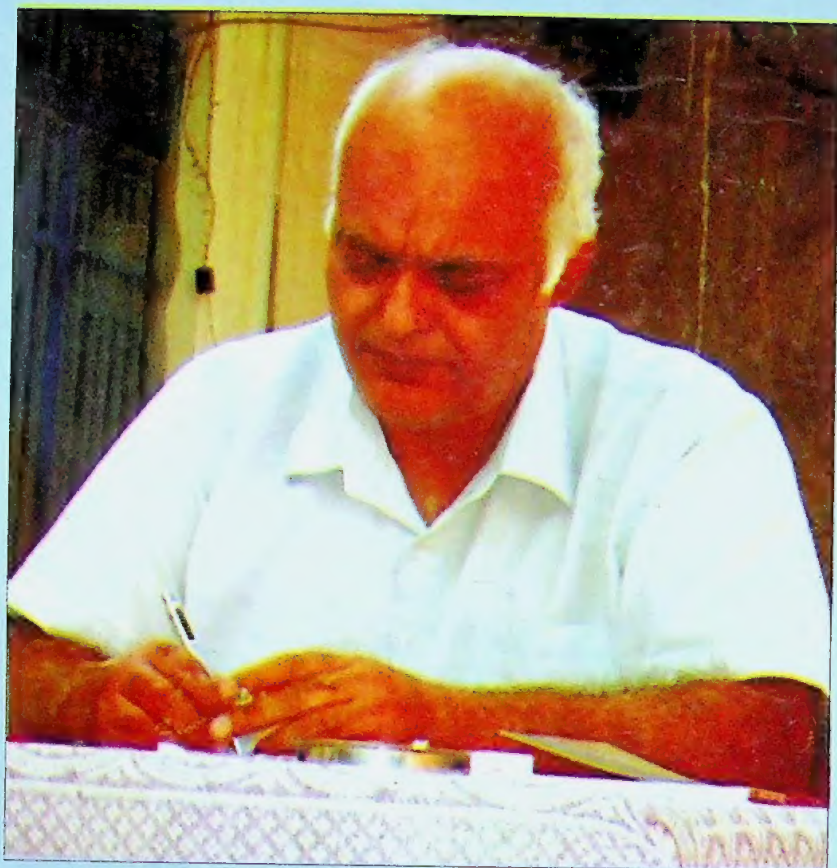
श्यामबिहारी... जन्म:1950, कश्मीर से विस्थापित। लेखन से जुड़ने के पश्चात जान पाया कि सतत विस्थापन ही मेरी नियति थी... कभी देह के तल पर, कभी मन के तल पर! जैसे पैरों के नीचे टिकने के लिए ज़मीन कभी थी ही नहीं!

उपलब्धि के नाम पर फिलहाल कुछ नहीं! कुछ डायरी कुछ कविताओं को लेकर यह प्रथम संकलन अपने कवि का परिचय अपने ढंग से, अपने अंदाज़ में करा सके इसी आशा और विश्वास के साथ यह पुस्तक आप सबको समर्पित है।